भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन

विभिन्न संकलपनाएं

सम्पादक : डॉ. दिनेश चन्द्र शर्मा

भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन

विभिन्न संकल्पनाएँ

सम्पादक :

डॉ. दिनेश चंद्र शर्मा

Ph.D., D.Lit. (Sub.)

निदेशक, कॉम्पिटिशन प्लस ग्रुप ऑफ इन्स्टीट्यूशन,
अजमेर

Books n Books

51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001

प्रकाशक :
पुष्पा शर्मा
Books n Books
51/1509, आचमन, वेदविहार,
लोहाखान, अजमेर-305001
ई-मेल : bnbajmer@gmail.com

संस्करण
प्रथम 2025

ISBN : 978 - 81 - 993854 - 7 - 4

मूल्य - 300/-

रचना -
भारतीय संस्कृति, शिक्षा और दर्शन विभिन्न संकल्पनाएँ

सम्पादक -
डॉ. दिनेश चंद्र शर्मा

आवरण -
श्रीनिवास प्रिन्टोग्राफिक्स, अजमेर

मुद्रक -
श्री श्याम ऑफसेट, किशनगढ़

महात्मा गाँधी का समाज दर्शन

आराधना माहेश्वरी
सहायक आचार्य (समाज विज्ञान विभाग)
हुकुमचन्द नोबल इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस एण्ड टेक्नोलॉजी, अजमेर

आधुनिक युग का समाज दर्शन वस्तुतः स्पेंगलर, सोरोकिन, श्री अरविन्द, महात्मा गांधी, डॉ. भीमराव अम्बेडकर आदि के विचारों का युग है। इनकी मुख्य विशेषता सामाजिक चिन्तन में मूल्य परिवर्तन की है। समाज दर्शन में 2 प्रत्यय सम्मिलित हैं- समाज और दर्शन। शाब्दिक रूप से इनका अभिप्राय है समाज का दर्शन। समाज सामाजिक संबंधों का तानाबाना है इसलिये समाज दर्शन का प्रत्यय संबंध व्यक्ति से है। सामाजिक संबंधों में भावनाओं, अनुभूतियों, उद्वेगों, प्रवृत्तियों का पुट होता है। समाज व्यक्तियों या उनके समूहों में नहीं बल्कि उनकी अन्त:क्रियाओं तथा परस्पर प्रतिमानों में व्यक्त होता है। समाज दर्शन में इन्हीं का दार्शनिक विवेचन किया जाता है।

सृष्टि के आदिकाल से ही मानव समाज में रहता आया है। समाजशास्त्र के अन्तर्गत मानव के सामाजिक सरोकारों, प्रक्रियाओं, व्यवसायों का विधिवत अध्ययन किया जाता है। बहुत से व्यक्ति मिलकर एक समाज की रचना करते हैं जो बदले में उनके अस्तित्व को सुखमय एवं उनके जीवन दर्शन की उपलब्धि को संभव बनाता है। मानव अपने जीवन लक्ष्य को प्राप्त कर सके इसके लिये समाज व्यवस्था आवश्यक है। गाँधी जी ने समान भाव से समान विकास के रूप में सर्वोदयी समाज का सिद्धान्त दिया है। सर्वोदयी समाज एक ऐसा संस्कृत शब्द है जिसका अभिप्राय समाज के अधिकतम कल्याण से है।

गिडिंग्स के अनुसार समाज स्वयं एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक संबंधों का योग है जिसके सहयोगी व्यक्ति परस्पर सम्बद्ध हैं। प्रो. मेकाइवर ने अपने ग्रंथ 'सोसायटी' में समाज की परिभाषा करते हुए लिखा है कि समाज रीति और व्यवहारों का प्रभुत्व एवं पारस्परिक सहायता का, एकाधिक समुदायों तथा विभागों और मानव आचार और स्वतंत्रता के नियंत्रण का क्रम है। इस सतत् परिवर्तनशील जटिल क्रम को समाज कहते हैं यह सामाजिक सम्बन्धों का जटिल जाल है और सदा परिवर्तित होता रहता है।

दर्शन मनुष्य का वह बौद्धिक प्रयास है जो उसे सत्ता सम्बन्धी ज्ञान देता है और उसका परम कल्याण करता है। दर्शन मनुष्य के हृदय में उत्पन्न होने वाले विश्व-सम्बन्धी अनेक कौतुहलों की शांति का एक साधन है। कुछ लोग दर्शन शब्द से उस शास्त्र की कल्पना करते हैं जिसमें विज्ञान के सिद्धांतों के आधारभूत सिद्धांतों की विवेचना की जाती है। 'दर्शन' पद की व्यत्पत्ति दो प्रकार से होती है। पहले, दृश्यते अनेन इति दर्शनम्, इस व्युत्पत्ति के अनुसार संस्कृत में दर्शन का अर्थ होता है, जिसके द्वारा देखा जाये। दर्शन शब्द से वे सभी पद्धतियां अपेक्षित होती हैं जिनके द्वारा परामर्श का ज्ञान होता है। दूसरे दृश्यते इति दर्शनम् अर्थात् जो देखा, समझा जाय वह दर्शन है । इस व्युत्पत्ति के अनुसार प्रामाणिक विषय ज्ञान दर्शन है। दर्शनशास्त्र में प्राय: उसी साक्षात्कार की कल्पना की जाती है जिसकी तार्किक विवेचना भी हो सके।

दर्शन शास्त्र सत्ता सम्बन्धी ज्ञान कराकर मनुष्य का परम कल्याण करता है । यह परम कल्याण ही दर्शन का लक्ष्य है। दर्शन की दृष्टि न केवल वस्तु के प्रमाण तक सीमित है अपितु वह भूत और भविष्य की भी विवेचना करता है। देश और काल से परे सदैव के प्रति गहरी जिज्ञासा दर्शन को अभिप्रेत है।

समाज दर्शन समाज के विभिन्न पक्षों की दार्शनिक मीमांसा करना अपना उद्देश्य समझता है। सामाजिक संबंध, सामाजिक परिवर्तन, सामाजिक कल्याण संयोजक और वियोजक जैसी अन्तर क्रियाओं का समाज दर्शन विश्लेषण की अपेक्षा रखता है और जब इसकी वैशिष्टीकरण की प्रक्रिया को विधिवत् रूप से किया जाता है तब इसे समाज दर्शन कहा जाता है। वस्तुत: समाज दर्शन का संबंध आदर्शों की प्रतिष्ठा से है इसलिए स्वाभाविक रूप से इसके अध्ययन की प्रणाली प्रयोगात्मक नहीं हो सकती। इसका क्षेत्र सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र से भिन्न है। समाज दर्शन के क्षेत्र में सामाजिक विज्ञानों के निष्कर्ष सम्मिलित होते हैं। यह अन्य क्षेत्रों से भिन्न है। दर्शन की एक शाखा होने के कारण समाज दर्शन का क्षेत्र सामान्य दर्शन से सीमित हैं जबकि सामान्य दर्शन आत्मा, जगत और ईश्वर के विषय में चिन्तन करता है। समाज दर्शन केवल सामाजिक संबंधों तक ही सीमित है। समाज दर्शन में मानव के सभी पहलू सम्मिलित हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि मानव जीवन की समस्त जानकारी समाज दर्शन के अन्तर्गत आ जाती है। वह समाज के साथ मिलकर सामाजिक संगठन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। इसमें मानव जीवन के सामाजिक महत्व के पहलुओं की व्याख्या करने का प्रयास करता है। यह जीवन के मूल्यों, उद्देश्यों और आदर्शों का अध्ययन है। समाज दर्शन वस्तुत: समाज में व्याप्त विभिन्न विषयों का एक समन्वयात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है जिससे व्यक्ति सत् और असत् का अंतर

कर सत् के मार्ग का अवलम्बन करता है और समाज को उन मान्यताओं के आधार पर आगे बढ़ने की ओर प्रेरित भी करता है। इस दृष्टि से समाज दर्शन की प्रकृति मानव समाज और जीवन के तात्विक पहलुओं के अध्ययन करने की है।

प्रसिद्ध फ्रांसिसी लेखक रेनेमुलोमिलर ने गांधी जी को अनन्य सामाजिक क्रान्तिकारी कहा है। उन्होंने गांधी के चिन्तन को आधुनिक संदर्भों में समाज के पुनर्निर्माण की संभावनाओं में विशिष्ट स्थान दिया है। गांधी जी के समाज दर्शन का अभिप्राय चिन्तन से उपजे विचारों पर आधारित है। गांधी जी अपने चिन्तन को हिन्दू धर्म से प्रारम्भ करते एवं हिन्दू दृष्टिकोण से शाश्वत समस्याओं के तात्विक समाधान उनके दर्शन के आधार है। उन्होंने अनुभव या तर्क के स्वतंत्र परिप्रेक्ष्य से समस्याओं के समाधान या उत्तर प्रदान करने की चेष्टा नहीं की। उनका स्वयं का कथन है कि ''मैं एक मात्र वेदों की दिव्यता पर विश्वास नहीं करता हूं। मेरा विश्वास है कि बाइबिल, कुरान एवं जिन्दावस्था भी उतनी ही ईश्वर प्रेरित क्रांति हैं जितनी कि वेद।'' गांधी के लिए सभी धर्म एक ही लक्ष्य तक पहुंचाने वाले भिन्न-भिन्न मार्ग हैं।

उन्होंने राजनीतिक दासता से मुक्ति तथा नवीन समाज व्यवस्था का स्वप्न देखा था। इसे उन्होंने सर्वोदयी समाज की संज्ञा दी है। गांधी जी ने भारत की सामाजिक समस्याओं का ध्यानपूर्ण अध्ययन किया था। वे समस्याएं जो हमारे सामाजिक ढांचे को खोखला कर रहीं थीं। इन समस्याओं के प्रति उनका विचार राष्ट्रीय ही नहीं वरन् अन्तर्राष्ट्रीय था। गांधी जी के अनुसार सामाजिक बुराईयां, आर्थिक प्रगति, छुआछूत इत्यादि परस्पर सम्बद्ध हैं। इसलिए इन सब का सामूहिक दृष्टि से निराकरण किया जाना अपेक्षित है। तत्कालीन समाज में आई बुराईयों के प्रति वे सचेत थे। इसलिए बुराईयों पर कठोर प्रहार कर नव समाज के निर्माण का उन्होंने संकल्प लिया। उनके सामाजिक चिन्तन में अस्पृश्यता समाज का सबसे बड़ा कलंक थी। गांधी जी ने कहा था कि अस्पृश्यता एक घुन है जो हिन्दू समाज को अन्दर ही अन्दर खाये जा रही है।

गांधी एक साधक योगी एवं भक्त थे। उनके समाज दर्शन में इन तत्वों का प्रभाव मूलतः दृष्टिगोचर होता है। उन्होंने सत्य के अन्वेषण में अहिंसा, ब्रह्मचर्य आदि उदात्त मूल्यों का प्रयोग किया और आध्यात्मिक शक्ति के नव निर्माण के सूत्रों को उन्होंने नये संदर्भों में प्रस्तुत किया। सर्वोदय के प्रत्येक पक्ष का गांधी जी ने इसे मुक्ति का सोपान माना। वे मानते थे स्वदेशी से स्वराज्य आधार और स्वराज्य से सर्वोदय का आदर्श, राम राज्य का आदर्श है। यह वह आदर्श है जिसमें बिना भेदभाव के सभी व्यक्तियों को कल्याण के लिए उन्नति का मार्ग खुला होगा। वे ग्रामोद्धार, अछूतोद्धार, मुस्लिम हिन्दू एकता इत्यादि कार्यों में सत्य एवं अहिंसा के आधार पर नव समाज की संरचना का स्वप्न देखते थे। उनकी मान्यता सभी धर्मों में एकता की रही है। उन्होंने

कहा था कि मैं हिन्दुत्व को सत्य का धर्म मानता हूं परन्तु इस्लाम और ईसाइयत भी सत्य के धर्म है। इसका अर्थ है कि सभी धर्मों में उनकी एकता के भाव का विचार। गांधी जी के सर्वोदय का समाज दर्शन उनकी अपनी हिन्दू आस्थाओं का धार्मिक एवं नैतिक सिद्धान्तों पर आधारित है।

गांधीजी प्राचीन वर्णव्यवस्था को मानते थे। लेकिन आधुनिक जाति प्रथा के वे तीव्र आलोचक थे। शरीर की तरह समाज को भी वे ठीक से चलने के लिए श्रम विभाजन और इसके विभिन्न अवयवों में सहयोग को वे मानते थे। जिनके लिए शिक्षा, रक्षा, कृषि, वाणिज्य एवं सेवा की आवश्यकता है। यह सब समाज रूप से यथा कर्त्तव्य समझकर करने चाहिए। इसलिए इसमें ऊंच-नीच का भेद करना उचित नहीं है। चूंकि ये सभी प्रकार के कार्य समाज के लिए समान रूप से उपयोगी हैं इसलिए सभी के लिए समान परिश्रम मिलना चाहिए क्योंकि अपने को बड़ा और दूसरे को छोटा ना समझें। किसी जाति विशेष को कोई विशेष अधिकार या सुविधा देने की बात इसलिए भी गलत है कि अपनी दृष्टि से सभी कार्यों के लिए समाज समान प्रतिष्ठा है। गांधी जी यह मानते थे कि इस दूषित जाति प्रथा के मूल में यद्यपि वर्ण व्यवस्था है लेकिन वे कहते हैं कि यह वर्ण व्यवस्था जो गुण, कर्म, स्वभाव पर आधारित थी, आज उसे स्वार्थी व्यक्तियों ने जन्म से मान लिया।

महात्मा गांधी वर्ण व्यवस्था में कार्य विभाजन की दृष्टि से समाज का विभाजन मानते हैं कि जहां ऊंच-नीच का कोई प्रश्न नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति स्वयं कर्त्तव्य का पालन करते हुए उच्चतम स्थान को प्राप्त कर सकता है। इसलिए एक दूसरे से ईर्ष्या का अवसर स्वतः ही समाप्त हो जाता है। वे कहते हैं मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि कोई आदर्श समाज व्यवस्था इन्हीं आदर्शों और सिद्धान्तों के आधार पर खड़ी की जा सकती है।

स्वामी दयानन्द ने भी समाज को वर्ण व्यवस्था के आधार पर ही गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार स्वीकार किया है। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि महात्मा गांधी के अनुसार भी जाति व्यवस्था, जो जन्म पर आधारित है, उसे स्वामी दयानन्द ने भी नकार दिया और आक्रामक रूख के आधार पर उन्होंने इसका प्रतिवाद किया। प्रत्येक वर्ण के कर्त्तव्य निर्धारण में स्वामी दयानन्द ने मनु स्मृति के आधार पर उनका विवेचन किया है तो महात्मा गांधी ने भारतीय संस्कृति के आधार पर उन्हीं विचारों को स्वीकार किया है। वे कहते हैं ब्राह्मणों को शिक्षा, क्षत्रियों को रक्षा, वैश्यों के हाथ में जीविका और शूद्रों के लिए सेवा का विधान उचित है यह विशुद्ध वैज्ञानिक श्रम विभाजन है।

गांधी जी ने लिखा है ''प्रचलित जाति प्रथा वर्णाश्रम के बिल्कुल विपरीत

है अत: इसको जितना जल्दी हो सके समाप्त कर दें, उतना ही अधिक ठीक है। जाति का धर्म से कोई संबंध नहीं है। फिर यह राष्ट्रीयता और आध्यात्मिकता दोनों के विकास में बाधक है।''   गांधी जी के समाज दर्शन में साधन और साध्य को विशेष बल दिया है। गांधी जी की मान्यता थी कि साधन की पवित्रता साध्य की पवित्रता है। यदि साधन पवित्र नहीं होगा तो साध्य भी पवित्र नहीं होगा। उन्होंने कहा साध्य, साधन को प्रमाणित नहीं कर सकता। गांधी जी ने इस विषय को भी लचीला बनाते हुए नमक तोड़ने के आंदोलन में इसे स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि एक तो जहां साध्य और साधन का संबंध एक ही व्यक्ति से रहता है और दूसरे, जहां सभी उत्तम साधन असफल सिद्ध हो चुके हैं इन दोनों परिस्थितियों में कभी-कभी बुरे साधन का भी प्रयोग करना उचित हो सकता है। परन्तु सभी अवस्थाओं में साध्य का अच्छा होना नितान्त अनिवार्य है। इसी अभिप्राय से गांधी जी ने स्वतंत्रता की प्राप्ति के लिए सत्य और अहिंसा रूपी सभी साधनों को स्वीकार किया। श्री जी.एन. धवन के अनुसार गांधी जी का साधन पर जोर बहुत अंशों में इसलिए है कि मनुष्य केवल कर्म कर सकता है फल की आकांक्षा नहीं, साथ ही साध्य साधन से उत्पन्न होता है।

महात्मा गांधी ने समाज व्यवस्था में सद्‌गुणों को मानवीय जीवन में उतारने का मार्ग भी प्रशस्त किया। सामाजिक क्षेत्र में गांधी जी का भाव सबसे बड़ा ट्रस्टीशिप का सिद्धान्त रहा जो आर्थिक संदर्भों में एक आदर्श समाज दर्शन को प्रस्तुत करता है। पूर्ण समता गांधी जी का आदर्श है उन्होंने पूंजी पर पूंजीपति को केवल ट्रस्टी होने का ही निर्देश किया है । अहिंसा और प्रेम के सिद्धान्त द्वारा वे समाज में पूंजीपति के धन को पूंजी विहीन व्यक्ति एवं अन्य जिन्हें धन की आवश्यकता है ऐसे व्यक्ति की भागीदारी को स्वीकार करते हैं। इसी विषय में उनका अपरिग्रह का व्रत है जो शोषण के विरूद्ध जनता में सम्पत्ति के समान अधिकार की बात करता है। गांधी जी कहा करते थे कि यदि हमें अपने पड़ोसियों के लिए प्रेम और सहानुभूति नहीं है तो कोई भी क्रान्तिकारी परिवर्तन लाना व्यर्थ होगा।

गांधी जी के समाज दर्शन में विकेन्द्रीकरण का मुख्य विचार है । समाज में मुख्य रूप में कृषि और कुटीर उद्योगों के आधार पर छोटी-छोटी मशीनों के द्वारा गांवों में व्यक्तियों को स्वावलम्बी बनाना उन्हें अभिष्ट था। प्राकृतिक और स्वस्थ वातावरण में विकेन्द्रित स्वावलम्बी ग्राम समुदाय के विकास में जीवन में सामाजिक भावना, सहयोग, पड़ोसियों के प्रति प्रेम और अन्य सद्‌गुणों की भावना होगी इससे राष्ट्रीय भावना, सामाजिक कल्याण का विकास होगा। गांधी जी ने हरिजन में लिखा था यद्यपि भारत अहिंसा के रास्ते पर अपना विकास करना चाहता है, तथापि इसे विकेन्द्रीकरण को स्पष्ट रूप से स्वीकार करना चाहिए। जिस झोंपड़ी में कुछ है ही

नहीं उसकी रक्षा के लिए भला पुलिस की क्या आवश्यकता?

गांधी जी अंत्योदय से सर्वोदय की स्थापना करना चाहते थे। जिस समाज में स्वावलम्बी अर्थव्यवस्था का आधार ही देश की भौगालिक और सामाजिक रचना का निम्नतर स्तर उन्होंने गांव को माना। ग्राम स्वराज्य का सिद्धान्त सर्वप्रथम गांधी जी ने रखा जिसमें राज्य का विकेन्द्रीकरण अभिप्रेरित था तथा मनुष्य का पूरा काम शरीर, श्रम, समता, संरक्षता, स्वदेशी, सहयोग, पंचायती राज नयी तालीम आदि कार्यक्रमों का अन्तर भाव था। गांधी जी समाज में विश्वात्मा के पोषक थे। समाज, संस्कृति और धर्म यहां सब राष्ट्र से गहरे रूप में सम्बन्धित थे। गांधी जी का चिन्तन समाज के सांस्कृतिक दृष्टि का चिन्तन था, जिसमें विकेन्द्रीकरण का तत्व सर्वप्रमुख उनके समक्ष रखा गया और उन्होंने इसे समाज का आधारभूत चिन्तन माना।

डॉ. राधाकृष्णन ने गांधी जी के विषय में कहा है कि गांधी जी हमारे समक्ष एक उस समाज की धारणा को प्रस्तुत करते हैं जिसका जन्म आध्यात्मिकता से हुआ है । समाज के सभी व्यक्तियों के सभी लक्ष्य स्वार्थ से परे, सार्वजनिक कार्यों में, व्यावहारिक दृष्टि से मोक्ष के प्रति प्रेरित होते रहें, यह उनको स्वीकार्य था। गांधी जी ने अपनी पद्धतियों का प्रयोग भारत की स्वाधीनता की समस्या को हल करने में लगाया। लेकिन इसके पश्चात् समाज में अहिंसात्मक दृष्टि से विकास का मार्ग उनका प्रमुख हथियार था। गांधी जी अहिंसा को समाज में उस रूप में धारण करते थे जहां वह कायरता को पराजित कर सके । लेकिन जहां केवल कायरता और हिंसा दो में से एक का चुनाव करना हो तो गाँधी जी ने कहा है कि वे हिंसा को स्वीकार करेंगे। उल्लेखनीय है कि गांधी जी ने यंग इंडिया में स्पष्ट करते हुए कहा था कि मेरा अहिंसा का सिद्धान्त एक अत्यधिक सक्रिय शक्ति है उसमें कायरता तो दूर, दुर्बलता तक के लिए स्थान नहीं है। एक हिंसक व्यक्ति के लिए यह आशा की जा सकती है इसलिए मैंने इन परिस्थितियों में अनेक बार कहा है कि यदि हमें अपने- अपने शास्त्रों की और अपने पूजा स्थलों की रक्षा सहनशीलता की शक्ति द्वारा अर्थात् अहिंसा द्वारा करना नहीं आता, तो अगर हम मर्द हैं तो हमें इन सब की रक्षा धर्म द्वारा कर पाने में समर्थ होना चाहिए। (यंग इंडिया सितम्बर 1927)

महात्मा गांधी ने स्वामी दयानन्द के इस विचार को और आगे बढ़ाया कि मानव के अस्तित्व के लिए जनतंत्र का उदय होना आवश्यक है। वे जनतांत्रिक भावनाओं के आधार पर परिवार और समाज की विभिन्न समस्याओं के समाधान का मार्ग खोजना उचित मानते हैं। महात्मा गांधी द्वारा अवधारित सामाजिक संगठन के बारे में यह स्मरण किया जा सकता है कि वह सब महान समाज दार्शनिकों का अभिष्ट राज्यहीन एवं वर्गहीन समाज ही है लेकिन उनका असाधारण योगदान इस तथ्य की खोज है

कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के विकेन्द्रीकरण किये बिना इसके लिए प्रयत्नशील होना निरर्थक है। डॉ. बी.एल. आत्रे ने सामाजिक संगठन के विषय में लिखा है कि हमें वर्ण व्यवस्था के स्थान पर वरण व्यवस्था की स्थापना करनी चाहिए। वरण व्यवस्था से मेरा अभिप्राय: उसी से है जिसे पश्चिमी चिन्तकों ने व्यवसायवरण, व्यवसाय निर्देशन, व्यवसाय प्रकाशन आदि कहा है।

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि संगठित जीवन के उद्देश्य, समाज व्यवस्था एवं क्रांति की प्रविधि से संयुक्त गांधी जी का समाज दर्शन सुव्यवस्थित है। उन्होंने मार्क्स जैसे समाज दार्शनिकों के सदृश्य राज्य रहित, वर्ग विहीन एवं जाति रहित समाज की अवधारणा की थी। मार्क्स के समय में संसार के सामने एक ही खतरा था पूंजीवाद का। किन्तु गांधी जी के समय में संसार के समक्ष तीन खतरे थे, पूंजीवाद, समग्रवाद एवं उनकी सहवर्ती अणुबम्बों एवं अन्य घातक शस्त्रों के रूप में हिंसा। इनके विरूद्ध क्रमिक संघर्ष करने के लिए उन्होंने तीन शस्त्र दिये- असहयोग, सत्याग्रह एवं अहिंसा। ये ही उनके समाज दर्शन के आन्तरिक तत्व हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह भली प्रकार नि:सृत हो जाता है कि महात्मा गांधी ने समाज दर्शन के मूल में गुण, कर्म, स्वभाव पर आधारित वर्ण व्यवस्था, अस्पृश्ता का विरोध, ऊंच-नीच, जन्म पर आधारित जाति व्यवस्था का खण्डन और मानव के दैदीय स्वरूप में परम पद की भावना से अनुप्राणित आध्यात्मिक चिन्तन, समानता के मूल बिन्दुओं को समेकित करता है। यह स्पष्टत: समाज दर्शन की उस धुरी का परिचायक बनता है जहाँ गांधी का चिन्तन, मानव की सम्पूर्ण परम्पराओं और क्षमताओं के समग्र विकास का द्योतक होता है। सर्वोदय से बढ़कर अंत्योदय की उनकी योजना मानव के उस समाज दर्शन को प्रतिबिम्बित करती है जो नयी भोर की देहरी पर मुँह बाये खड़ा है। साम्यवादी और उदारवादी चिन्तन के मुख्य बिन्दुओं को उन्होंने अपने दर्शन में समेटा यह उनके समाज दर्शन की विशिष्टता है। इसका आधार शाश्वत और चिरंतन जीवन मूल्यवादी शांति, प्रगति और उत्थान के लिए सत्य, अहिंसा और सर्वोदय का सिद्धान्त सब कालों में सभी समाजों में सदैव रहा है।

❑❑❑